पूर्वोत्तर की कविता में देश-राग

प्रो. हरीशकुमार शर्मा

भारतीय साहित्य के भावनात्मक अंतः संबंध की यदि हम बात करें तो इसके कई आयाम हैं और इसमें काफी गहराई है। भारत की जो भावनात्मक एकता हमें निरंतर दिखाई देती है और जिसका आधार सांस्कृतिक एकता है, उसके निर्माण का बहुत बड़ा श्रेय भारतीय साहित्य को है। भारत-भूमि की विशेषता, भारतीय जन की प्रकृति, भारतीय धर्म-साधना की शक्ति और भारतीय संस्कृति की व्यापकता से भरी उदार दृष्टि में ही ऐसा कुछ है कि तमाम तरह के विध्वंशकारी आक्रमणों और हमको मिटाने के लिए हुए अनंत प्रयत्नों के बावजूद हजारों वर्षों में हम न मिटे, न टूटे, न कटे, न बंटे। भावनात्मक संबंधों की वह एकात्म-धारा आज भी वैसी ही अक्षुणय और अप्रतिहत गति से हमारे बीच में प्रवाहमान है। तोड़ने का प्रयास करने वालों की कमी आज भी नहीं है, पर जोड़ने वाले भी देश के हर कोने में बैठे अपना काम करने में लगे हैं। यह पुनीत कार्य हर काल में, हर क्षेत्र से और हर भाषा में होता रहा है तथा आज भी हो रहा है, भले ही हमारी दृष्टि हरेक तक न पहुँचे। देश भर की विभिन्न भाषाओं में लिखे जा रहे साहित्य को यदि हम देख पाएँ तो ऐसे बहुत से बिंदु निकलकर सामने आएंगे जो हमारे पारस्परिक भावनात्मक अंतःसंबंधों को परिपुष्ट करते नजर आएँ, पर यहाँ उसके एक सबसे महत्वपूर्ण पक्ष देशानुराग या राष्ट्रीयता की भावना तक ही हम सीमित रहेंगे और पूर्वोत्तर भारत में लिखे जा रहे काव्य में उस पर दृष्टिपात करेंगे।

'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है, वह नर नहीं है पशु निरा है और मृतक समान है', 'जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं। वह हृदय नहीं है पत्थर है जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं', 'अरुण यह मधुमय देश हमारा', 'तेरा वैभव अमर रहे मां, हम रहें न रहें' जैसी कितनी ही हिंदी की अत्यधिक प्रचलित काव्य-पंक्तियों से हम परिचित हैं। देश की अन्य भाषाओं के साहित्य में भी ऐसे बहुत से भाव भरे हुए हमें मिल जाते हैं, परंतु पूर्वोत्तर के साहित्य से हमारा उतना परिचय नहीं है। साहित्य क्या, पूर्वोत्तर भारत की अन्य बातों के बारे में भी हम कितना जानते हैं। जबकि यथार्थ यह है कि भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र न तो भारत की मुख्य सांस्कृतिक धारा से अलग है और न चिंताधारा से। जो चिंताएं समूचे देश की रही हैं, वही चिंताएं यहाँ भी व्यक्त होती रही हैं और साहित्य ने इस तरह की जन-भावनाओं को वाणी देने का काम बखूबी किया है। कहना होगा कि अपनी स्थिति पर विचार करने के साथ ही देश के प्रति अनुराग-भाव और उसकी चिंताओं पर चिंतित होना, समस्याओं पर चिंतन-मनन करना- इन

भावों की कोई कमी पूर्वोत्तर के साहित्य में नहीं रही है। संस्कृत साहित्य की बात छोड़कर यदि हम आधुनिक भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य की ही बात करें तो भी पूर्वोत्तर क्षेत्र में भक्तिकाल से ही देश की परिस्थितियों पर चिंता और चिंतन देखने को मिलता है और आधुनिक दौर में भी यह क्रम बराबर

जारी है। मध्यकाल में असमिया समाज और संस्कृति की दिशा बदलकर रख देने वाले श्रीमंत शंकरदेव ऐसे महापुरुष हुए जिन्होंने भारत के बहुत बड़े भू- भाग का भ्रमण करके देश की एकात्मता को जाना-समझा और तदानुकूल भाव लोगों के मन में भरे। उनके सुयोग्य शिष्य माधवदेव ने उनके इस कार्य को आगे बढ़ाया। उन्होंने उद्घोष किया "धन्य धन्य कलिकाल, धन्य नर तनु भाल, धन्य धन्य भारत बरिष।"[1] श्री चित्र महंत ने लिखा है- "असम के दो हजार वर्ष पुराने इतिहास में शंकरदेव ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने देश के इस पूर्वांचल को एक राष्ट्र, एक वाणी तथा एक संस्कृति से सम्पन्न किया। शंकरदेव से पहले अन्य किसी भारतीय ने एक राष्ट्र, एक भाषा और एक संस्कृति से भारत जैसे राष्ट्र को बांधने की चेष्टा नहीं की। राजनीतिक, सामाजिक तथा भौगोलिक दृष्टि से भी यह भू-भाग शेष भारत से सर्वदा अछूता रहा है। किंतु महान कवि शंकरदेव ने इस महान भारत में जन्म लेने के कारण हमेशा अपने को धन्य माना है।"[2] आधुनिक काल में कवि हीरेन भट्टाचार्य लिखते हैं- "मेरे प्राण से भी मेरे गान से भी प्यारा मेरा देश।"[3]

मातृभूमि से प्रेम राष्ट्र-प्रेम की पहली सीढ़ी है। जिस धरती पर जन्म लिया है, उसके प्रति अनुराग-भाव होना स्वाभाविक है। किसी भी देश या जाति में जन्म लेना भले अपने हाथ में न हो, पर जन्म लेने के लिए किसी- न-किसी देश-जाति का होना परमावश्यक है। फिर जिस देश-जाति में जन्म लिया हो, जहाँ के रजकणों से शरीर पुष्ट हुआ हो, जहाँ के वातावरण में रच-बस कर मनुष्य का विकास हुआ हो, उसके प्रति भला किसका मन कृतज्ञ-भाव से नहीं भर उठेगा। कविवर रामनरेश त्रिपाठी की यह पंक्तियां इसी संदर्भ में बहुषः उद्धृत की जाती हैं- "विषुवत रेखा का वासी, जो जीता है नित हांफ-हांफ कर। वह भी अपनी मातृभूमि पर, कर देता है प्राण निछावर।"

और उस पर भी वह देश यदि भारत जैसा हो जिसके प्रति सदैव से एक लालायित भाव विदेशियों के मन में रहा हो और जिसके बारे में मान्यता रही हो कि यहाँ देवता तक जन्म लेने के लिए आतुर रहते हैं तथा इसी सोच के वशीभूत होकर यहाँ का कवि गाता रहा हो "गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे। स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवंतु भूया पुरुषः सुरत्वात।" वैदिक काल से ही भारत के कवि भारत भूमि का भावपूर्ण स्तवन करते रहे हैं और यह परंपरा वर्तमान तक चली आयी है। 'माता भूमि पुत्रोदृहम पृथिव्यां' तथा 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' से लेकर आधुनिक काल तक के बहुत से कवियों ने इस तरह के भाव अपनी कविता में व्यक्त किए हैं। उड़िया कवि राधानाथ राय कहते हैं- "भारत भूमि हमारी जननी/नहीं पुण्य भूमि इससे बढ़कर"[4] और तेलुगु कवि विश्वनाथ सत्यनारायण लिखते हैं-"कहीं भी चला जा/ कहीं भी कदम रख / किसी भी आसन पर चढ़/ कोई भी सम्मुख आये/ सराह अपनी मातृभूमि भारती को/ अपनी जाति के गौरव की रक्षा कर।"[5] कन्नड़ कवि दत्तात्रेय रामचंद्र बेद्रे अपनी कविता में भाव व्यक्त करते हैं- "एक मां के बच्चे हैं हम / एक ही मायके की संताने हैं हम / रंग भिन्न हमारे तो क्या हम आए हैं एक होकर / भूमि भिन्न हमारी तो क्या / हम आए हैं एक हृदय लेकर।"[6] रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी अपनी विश्व प्रसिद्ध रचना 'गीतांजलि' में लिखा है- विशाल विश्व में भारत के महामानव तट पर जननी जागी है।

"आओ हे आर्यों, हे अनार्यों, अंग्रेजों, ईसाइयो आओ! हे ब्राह्मण आ! मन शुद्ध कर और सबका हाथ पकड़। हे हरिजन आ ! और अपने समस्त अपमान भार को हल्का कर लें।"[7]

विभिन्न भाषाओं एवं जीवन-शैलियों का प्रयोग करते हुए भी हमारे बीच ऐसा कुछ साझा हमेशा रहा है जो हमारे बारे में प्रचलित विविधता में एकता की धारणा को परिपुष्ट करता रहा है। तमिल कवि सुब्रह्मण्य भारती अपनी 'भारतमाता' कविता में लिखते हैं- "भारतमाता के तीस करोड़ मुख हैं पर आत्मा एक! माता अनेक भाषा बोलती है पर उनकी आत्मा एक है।"[8] राजसत्ता भले कभी सक्षम हाथों में जाकर विराट रूप धारण करती रही और कभी अयोग्य उत्तराधिकारियों की अक्षमता से सिमटती रही, पर देश के कवि, मनीषी, चिंतक, रचनाकार की दृष्टि से भारत का वह समग्र रूप कभी ओझल नहीं हुआ और वह सदैव अपने विचारों व कर्मों से देश को एक सूत्र में बांधे रखने का प्रयत्न करता रहा। इस कार्य में उसके लिए न तो भाषाओं की भिन्नता आड़े आई, न जीवन-शैलियों की विविधता। बाह्यतः दिखने वाले नाना प्रकार के भेदों के बीच से भी अंतरतः एक अभेदत्व का भाव सदैव हमें चैतन्य किए रहा। यही कारण था कि हम अलग-अलग राजसत्ताओं के अधीन रहते हुए भी सांस्कृतिक रूप से एक रहे, एकजुट रहे, क्योंकि हम सांस्कृतिक रूप से सदा एक भारत थे, इसलिए राजनीतिक रूप से भी जब भी समुचित अवसर आया- एक राष्ट्रीयता की भावना से अनुप्राणित होने में हमें कोई विशेष समस्या नहीं हुई। आज हमारी समस्या एक अलग और उलट रूप में हमारे सामने है। आज जबकि भारत राजनीतिक रूप से भी एक सशक्त राष्ट्र के रूप में विश्व के समक्ष पूरी दृढ़ता के साथ खड़ा है और राजनेता से लेकर जनसाधारण तक इस राष्ट्रीयता की भावना को अनुभव करते हैं, तब कुछ मुट्ठी भर लोगों का समूह अपने लेखन और विचारों के द्वारा लोगों को यह समझाने में लगा रहा कि भारत एक राष्ट्र नहीं, अपितु अनेक राष्ट्रीयताओं का समुच्चय है, संघ है। यह वर्ग, जो कि है तो बहुत थोड़ा सा, पर सत्ता का निरंतर प्रश्रय मिलते रहने के कारण इसकी आवाज बहुत बुलंद रही। इसकी दृष्टि में भारत का प्रत्येक प्रांत दरअसल एक राष्ट्र है जो कि एक संघ के रूप में आपस में जुड़े हैं।

तथापि यह देश क्या है, इसका स्वरूप क्या है, इसकी परिधि के अंतर्गत क्या-क्या आता है, इस पर बहुत सोच- विचार किए बिना सामान्यजन के मन में उसकी एक भावच्छवि सहज ही साकार उठती है और वह उसके आगे नतमस्तक होता है। उसके लिए हर तरह के समर्पण के लिए संकल्पबद्ध होता है। देश के प्रति प्यार तो सभी के मन में भरा होता है पर कवि उस प्यार को, प्यार के एहसास को जगाता है, जिंदा करता है, हमारे भीतर उस बोध को जागृत करता है। 'हमारो उत्तम भारत देश', 'धन्य भूमि भारत सब रत्न की उपजावनि' 'जिएं तो जिएं इसी के लिए, रहे अभिमान रहे यह हर्ष। निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष', 'तेरा वैभव अमर रहे मां, हम रहें न रहें', 'भारति! जय विजय करे, कनक शस्य कमल घरे"[9] जैसी कितनी ही पंक्तियां हिंदी के रचनाकारों की हैं जो कवि के भीतर के देश-राग का प्रस्फुटन ही नहीं करतीं, पढ़ने-सुनने वाले के मन में भी वही अनुराग जगाती हैं। अन्य भारतीय भाषाओं का जो साहित्य

हमें हिंदी के माध्यम से सुलभ होता है उससे हम जान पाते हैं कि हर क्षेत्र और भाषा के कवि ने देश के कोने-कोने में देश- प्रेम का भाव भरने में अपनी ओर से कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। पूर्वोत्तर भारत के बारे में भले हमारी जानकारी अत्यंत सीमित होने के कारण हम जान नहीं पाते, पर वास्तविकता तो यह है कि पूर्वोत्तर क्षेत्र के रचनाकार भी इस दृष्टि से किसी से पीछे नहीं रहे। अपनी क्षेत्रीय समस्याओं से जूझते हुए भी कवि ने भारत और उसकी समस्याओं से अपना ध्यान विरत नहीं रखा है। हिंदी और असमिया दोनों भाषाओं में काव्य-सृजन करने वाले रजनीकांत चक्रवर्ती ने अपनी प्रथम प्रकाशित पुस्तक 'राष्ट्रनाव' के प्रारंभ में लिखा था-

"जय जननी भारत माता

तू ही मेरी शक्ति विधाता।

राष्ट्र की सेवा भाषा से करें

कहीं न पीछे हम न अड़ें

यही होगा जीवन का व्रत

राष्ट्र नाव से करो जाग्रत।"[10]

मणिपुरी कवि लमावम कमल अपनी भावनाएं कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं- "जान गया मां तुम ही हो निर्धन पुराण। भारत की इस बाटिका में देखो मां तुम्हारे अज्ञानी पुत्र न चढ़ा जल चरणों पर तुम्हारे लगे हैं मरुभूमि में तलैया खोदने में।"[11]

हिंदी भाषा में लिखने वाले मिजोरम के कवि सी. कामलोवा अपने एक गीत में कहते हैं- "हम एक थे हम एक हैं-/ जग को आज सुनाना है। अब कोई ताकत कोई भुलावा, हमें न भटका पायेगा।/ ... देश की एकता अखण्डता कभी न खण्डित होने देंगे ।। विश्व-प्रेम का नया सन्देश सबको आज सुनायेंगे..."[12] मिजोरम के ही कवि लुईसहाउन्हार लिखते हैं- "भारत देश है अपना महान / हम सब हैं इसकी सन्तान / विभिन्न प्रदेश सभी एक हैं। मिजोरम रखता सबका मान।"[13] मिजोरम के ही एक अन्य कवि एच. वानलललोमा गाते हैं- "एक-दूसरे की निन्दा न कर/ जाति-पांति में भेद न कर/ मित्रता का हाथ बढ़ाकर / मिल सजायें भारत सुन्दर / अपने वतन को उन्नति के पथ पर मित्रता का सुयश फैलाकर / जो देखे ललचाये, ऐसा देश बनायें सब मिलकर।"[14]

मणिपुरी कवयित्री हरिप्यारी देवी थोकचोम लिखत हैं-

"गर्व है हमें इस देश पर

और इसकी एकीकरण व्यवस्था पर...

उत्तर से लेकर दक्षिण तक और

पूरब से लेकर पश्चिम तक

हम सब एक हैं

आओ हम अनेक से एक

बनें और बनें रहें युगों तक एक।"[15]

साहित्य तो साहित्य, लोक-साहित्य तक में राष्ट्रीयता की भावना की यथा-अवसर मुखर अभिव्यक्ति हुई है। साहित्यकारों ने देश की समस्याओं को बखूबी समझकर उन पर अपनी प्रतिक्रिया दी है। देश एक है तो देश की उपलब्धियां भी सभी की हैं और समस्याएं भी साझी हैं। देश का शत्रु हर देशवासी का शत्रु है, फिर चाहे वह देशवासी किसी भी कोने का निवासी हो। पाकिस्तान और चीन जैसे भारत के पड़ोसियों की नीयत देश के प्रति अच्छी नहीं। इसको हर देशवासी महसूस करता है। पूर्वोत्तर का लोक-गीतकार भी इससे अनजान नहीं। असम-अरुणाचल की सीमा पर बसने वाली एक जनजाति है- मिशिंड। इस जनजाति में प्रचलित एक लोकगीत में पाकिस्तान को पापी, चीन को अपराधी कहा गया है और कहा गया है कि यह दोनों शत्रु कश्मीर को हड़पना चाहते हैं-

"पापकानो पाकिस्तान सिड़ाव्लामान् सिनाड़ो कास्मिरवो कांकान्ना, रद् वम् कुपोमोदुनड़।"[16]

यही नहीं, एक लोकगीत में लोक गायक बड़े रोचक तरीके से प्रेमी-प्रेमिका के संबंधों की तुलना प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के देशहित में किए जाने वाले कामों से करता है- "हे इन्दिरा! आप इस सुन्दर भारत में सुशासन करके देश को समृद्धि की ओर ले जाइए और हे प्रिय ! तुम इस सुन्दर जवानी से भरपूर जीवन को सुरक्षित रखो। भारत में इन्दिरा गांधी जैसे समर्थ नेता की आवश्यकता है और जीवनसाथी के लिये भी प्रेमिका की जरूरत है। दिल्ली बहुत दूर है, जहां इन्दिरा गांधी रहकर भारतवासियों के दुख को भली-भांति नहीं समझ सकतीं और मेरा प्रेमी भी मुझसे दूर रहकर मेरी बातों को भली-भांति नहीं समझता। हे इन्दिरा ! भारत में गड़बड़ी को आपने कैसे समझा और हे प्रिय ! तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ कि नवयुवती का चरित्र गड़बड़ है? भारत की समस्याओं का चिंतन-मनन करने से इन्दिरा गांधी बीमार पड़ जाती हैं और मैं अपने प्रेमी की समस्याओं का चिंतन-मनन करने से बीमार हो जाती हूँ।"[17]

अरुणाचल प्रदेश की ही एक जनजाति ताड़सा के एक लोकगीत में गीतकार अरुणाचल के साथ भारत का नाम लेना नहीं भूलता-

"भारत मोड़ना अरुणाचल हारा हितंड़ खोड़ती,

तड़सा नोकते आदी नीशी आपातानी खामती।

ऐथी मोड़ना तंड़सा हारा हामुड़ आशे वे तोड़ीबो

तिराप यूड़खो ताड़सा हारा हामुड़ आशे तोड़ी

मुकलोम लोड़चाड़ जुगली पांड़सा साफो सावा तोड़ी

भारत मोड़ना अरुणाचल अरुणाचल हारा हितेड़

खोड़ती

तड़सा नोकते आदी नीषी आपातानी खम्ती।"[18]

(भारत के विशाल भू-भाग में अरुणाचल प्रदेश का जन्म हुआ जहाँ तड़सा, नोक्ते, आदी, न्यीशी, आपातानी, खामती जैसी जनजातियां विद्यमान हैं। उसी के अंतर्गत तड़सा जनजाति का एक विशाल क्षेत्र है जिनका तिरप नदी के ऊपरी क्षेत्रों में निवास स्थान है। तड़सा के अंतर्गत आने वाली हम सभी जनजातियां मुकलोम, लोड़चाड़, जुगली, पाड़सा आपस में भाईचारे के साथ रहते हैं। भारत के विशाल भू-भाग में ...)

भारत में धरती को माँ माना गया है। इसी कारण से यहाँ भारत-भूमि को भारतमाता की संज्ञा से अभिहित कर उसकी माँ के रूप में वंदना की गयी है। अरुणाचल की गालो जनजाति के एक गीत में भी धरती को माँ कहा गया है- "माँ रूपी इस धरती में खेती करने चलो, अपने साथ अपने घर में पड़े हुए टोकरी, बड़ी सी दाव और कुल्हाड़ी को साथ लेते आओ।"

देश लोगों से बनता है और किसी देश के लोग ही उसको आगे बढ़ाते हैं, उसको ऊँचा उठाते हैं। परंतु इसके लिए उनका सक्षम और चरित्रवान होना आवश्यक है, स्त्री-पुरुष सभी को कंधे-से-कंधा मिलाकर चलना आवश्यक है। परिश्रम और ज्ञान दोनों की आवश्यकता है। आधी आबादी के कमजोर होने से देश मजबूत नहीं हो सकता और न ही किसी एक जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्रादि के ही लोगों के आगे बढ़ जाने से देश आगे बढ़ता है। सभी नागरिकों से मिलकर देश बनता है और सभी के सहयोग से और सभी क्षेत्रों के सम्यक विकास से देश मजबूती और खुशहाली की राह पर जाता है। इस विषय पर भी लोक कवि का बराबर ध्यान है। अरुणाचल की मिशमी जनजाति के एक गीत में कहा गया है- "युवाओं को हर पल तैयार रहना चाहिए। हर वक्त हाथों में दाव लेकर चलना चाहिए। दाव और कलम दोनों धारण करना चाहिए। इसी से अरुणाचल की प्रगति हो सकती है। अरुणाचल की युवतियों को खावात नामक हथियार लेकर चलना

चाहिए। इसी से खोद-खोदकर फसल उगायी जायेगी। नारियों को भी ज्ञानार्जन करना चाहिए, तब जन्मभूमि की प्रगति हो सकेगी।"[19]

निश्चय ही श्रेष्ठ नागरिक श्रेष्ठ राष्ट्र के निर्माता होते हैं। उनका स्वस्थ, सबल और दुगुणों से रहित होना उनके लिए, उनके समाज के लिए और उनके देश तथा प्रदेश के लिए हितकर होता है। वे जो भी अच्छा करते हैं, वह उनके साथ-साथ उनके देश और समाज के लिए भी अच्छा होता है और उनके बुरे कार्य का परिणाम देश-प्रदेश के लिए भी अनिष्टकारी होता है। व्यक्ति की उपलब्धियां राष्ट्र की उपलब्धियों में जुड़ती हैं और राष्ट्र की उपलब्धियों का लाभ व्यक्ति को होता है। इसलिए अरुणाचल प्रदेश की ही एक जनजाति नोक्ते में बच्चे के अन्नप्राशन के समय ऐसी भावनाएं व्यक्त की जाती हैं- "तुम्हारा जन्म एक महान उद्देश्य के लिये हुआ है। तुम बड़े होकर अधिक-से-अधिक कृषि-कार्य करो और अधिक अनाज उपजाओ। इससे तुम इतने अमीर हो जाओगे कि दूसरे गाँव में जाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। तुम अफीम नहीं खाना यानी नशे से परहेज करना।"[20] मेघालय के कवि हावर्ड डी. मोमिन भी वहाँ के गारो जनों को उद्बोधित करते हुए कहते हैं- "जागो गारो नर नारियो/आओ बाहर के प्रकाश में ऊंचा उठाकर सिर अपना, लक्ष्य रखकर ऊपर/भयरहित दृष्टि के साथ ज्ञान की मशाल थामे, युवक-युवतियों/जलाओ एक-दूसरे की मशाल।"[21]

संदर्भ

1. चित्र महन्त, महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव : कृति और कृतित्व, असम हिंदी प्रकाशन, गुवाहाटी, पृ. 6

2. वही

3. समन्वय पूर्वोत्तर, अंक-18, जन. मार्च, 2013,पृ. 83

4. डॉ. अवधेश नारायण मिश्र एवं डॉ. नन्द किशोर पाण्डेय (संपादक), आधुनिक भारतीय कविता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 10

5. वही, पृ. 8

6. वही, पृ. 226

7. डॉ. मंजु मुकुल एवं डॉ. हर्षवाला शर्मा (संपा.) भारतीय साहित्य : भाषा, मीडिया और संस्कृति, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 186

8. वही, पृ. 205

9. विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, पृ. 40

10. वही, पृ. 40-41

11. परेशचन्द्र देव शर्मा, शोध धारा, पूर्वोत्तर भारत विशेषांक, दिसंबर 2011, पूर्णांक 22, पृ. 141

12. प्रो. देवराज, वही, पृ. 136

13. समन्वय पूर्वोत्तर 16-17, जुलाई-दिसंबर,2012, पृ. 32

14. वही 12, जुलाई-सित. 2011, पृ. 21

15. वही 7, अप्रैल-जून, 2010, पृ. 30

16. वही 18, जनवरी-मार्च, 2013, पृ. 32

17. मिशिङ् जनजाति का लोक साहित्य, आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, सन् 1984, पृ. 97

18. देवकान्त पांगिङ, खड़ी बोली और मिशिङ् लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, अप्रकाशित शोध- प्रबंध, 2002, अरुणाचल विश्वविद्यालय, ईटानगर, पृ. 33

19. भूपेन्द्र सिंह, अरुण प्रभा, अंक दो, संयुक्तांक 2002-03, अरुणाचल विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की शोध पत्रिका, पृ. 154-55

20. अरुण कुमार पाण्डेय, समकालीन भारतीय साहित्य, पूर्वोत्तर भारत विशेषांक, अंक 164, नवबंर-दिसंबर 2012, पृ. 141

21. श्रुति, वही, अंक 141, जन. फर. 2009 पृ. 155.

संपर्क :- आचार्य, हिंदी विभाग,

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु

सिद्धार्थनगर, उत्तर प्रदेश